Chapter सोलह

पयोव्रत पूजा विधि का पालन करना

जैसाकि इस अध्याय में वर्णन किया गया है, देवताओं की माता अदिति के अत्यन्त खिन्न होने पर उनके पति कश्यपमुनि ने बताया कि वे अपने पुत्रों के लाभ के लिए तपस्या करके किस तरह व्रत रखें।

चूँकि स्वर्ग में देवता दिखलाई नहीं पड़ रहे थे अतएव उनकी माता अदिति उनके वियोग के कारण अत्यधिक दुखी थीं। एक दिन अनेकानेक वर्षों के बाद कश्यपमुनि ध्यान की समाधि से उठे और अपने आश्रम वापस आये। उन्होंने देखा कि उनका आश्रम सुन्दर नहीं लग रहा था और उनकी पत्नी अत्यन्त खिन्न थीं। उन्हें आश्रम भर में हर जगह शोक के चिह्न दिखे। अतएव मुनि ने अपनी पत्नी से आश्रम की कुशलता के विषय में पूछा और जानना चाहा कि वह इतनी खिन्न क्यों दिख रही है। अदिति ने

कश्यपमुनि को आश्रम की कुशलता के बारे में बताने के बाद कहा कि अपने पुत्रों की अनुपस्थिति के कारण वह खिन्न है। तब अदिति ने उनसे प्रार्थना की कि वे यह बतलाएँ कि उनके पुत्र किस प्रकार लौटकर अपने पदों को पुन: प्राप्त कर सकते हैं। वे अपने पुत्रों का कल्याण चाहती थीं। अदिति की प्रार्थना से द्रवित होकर कश्यपमुनि ने उन्हें आत्म-साक्षात्कार के दर्शन, पदार्थ तथा आत्मा के अन्तर तथा भौतिक क्षति से अप्रभावित रहने की विधि का उपदेश दिया। किन्तु जब उन्होंने उसे देखा कि उनके इन उपदेशों के बावजूद अदिति संतुष्ट नहीं है, तो उन्होंने उसे वासुदेव जनार्दन की पूजा करने की सलाह दी। उन्होंने उसे विश्वास दिलाया कि केवल भगवान् वासुदेव ही उन्हें सन्तुष्ट करके उनकी सारी इच्छाओं को पूरा कर सकते हैं। फिर जब अदिति ने भगवान् वासुदेव की पूजा करने की इच्छा व्यक्त की तो प्रजापति कश्यप ने पयोव्रत नामक पूजा की विधि बतलाई जो बारह दिनों में सम्पन्न होता है। उन्हें ब्रह्माजी ने बताया था कि इस विधि से भगवान् कृष्ण को कैसे प्रसन्न किया जा सकता है। इस प्रकार कश्यपमुनि ने अपनी पत्नी को इस व्रत का तथा इसके विधि-विधानों का पालन करने की सलाह दी।

श्रीशुक उवाच
एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमातादितिस्तदा ।
हृते त्रिविष्टपे दैत्यै: पर्यतप्यदनाथवत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; पुत्रेषु—अपने पुत्रों को; नष्टेषु—अपने पदों से अदृश्य हुए; देव-माता—देवताओं की माता; अदिति:—अदिति ने; तदा—उस समय; हृते—खो जाने के कारण; त्रि-विष्टपे—स्वर्गलोक से; दैत्यै:—असुरों के प्रभाव के कारण; पर्यतप्यत्—पश्चाताप करने लगी; अनाथ-वत्—अनाथ की तरह।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा! जब अदिति के पुत्र देवतागण स्वर्गलोक से इस तरह से अदृश्य हो गये और असुरों ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया तो अदिति इस प्रकार विलाप करने लगी मानो उसका कोई रक्षक न हो।

एकदा कश्यपस्तस्या आश्रमं भगवानगात् ।
निरुत्सवं निरानन्दं समाधेर्विरतश्चिरात् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक दिन; कश्यपः—कश्यपमुनि; तस्याः—अदिति के; आश्रमम्—आश्रम में; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; अगात्—गये; निरुत्सवम्—बिना उत्साह के; निरानन्दम्—बिना हर्ष के; समाधेः—समाधि से; विरतः—जगकर; चिरात्—दीर्घकाल के बाद।

परम शक्तिशाली कश्यपमुनि कई दिनों बाद जब ध्यान की समाधि से उठे और घर लौटे तो देखा कि अदिति के आश्रम में न तो हर्ष है, न उल्लास।

स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः ।
सभाजितो यथान्यायमिदमाह कुरूद्वह ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सः—कश्यपमुनि; पत्नीम्—अपनी पत्नी को; दीन-वदनाम्—सूखा मुखमंडल किये; कृत-आसन-परिग्रहः—आसन ग्रहण करके; सभाजितः—अदिति द्वारा आदर किये जाकर; यथा-न्यायम्—काल तथा देश के अनुसार; इदम् आह—इस प्रकार कहा; कुरु-उद्वह—हे कुरुश्रेष्ठ महाराज परीक्षित।

हे कुरुश्रेष्ठ! भलीभाँति सम्मान तथा स्वागत किये जाने के बाद कश्यपमुनि ने आसन ग्रहण किया और अत्यन्त खिन्न दिख रही अपनी पत्नी अदिति से इस प्रकार कहा।

अप्यभद्रं न विप्राणां भद्रे लोकेऽधुनागतम् ।
न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योश्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; अभद्रम्—दुर्भाग्य; न—नहीं; विप्राणाम्—ब्राह्मणों का; भद्रे—हे अदिति; लोके—इस संसार में; अधुना—इस समय; आगतम्—आ गया है; न—नहीं; धर्मस्य—धर्म का; न—नहीं; लोकस्य—सामान्य लोगों का; मृत्योः—मृत्यु; छन्द-अनुवर्तिनः—जो लोग मृत्यु के गालों में जाने वाले हैं।

हे भद्रे! मुझे आश्चर्य है कि कहीं धर्म पर, ब्राह्मण वर्ग या काल की सोच में पड़ी जनता को कुछ हो तो नहीं गया?

तात्पर्य : इस जगत के सभी निवासियों के लिए और विशेष रूप से ब्राह्मणों के लिए नियत कर्म तो हैं ही, किन्तु जो लोग काल के गाल में जाने वाले हैं ये उन लागों के लिए भी हैं। कश्यपमुनि को आश्चर्य हो रहा था कि क्या सारे अनुष्ठानों का जो सर्वसाधारण के हितके लिए हैं उल्लंघन हुआ है। इसलिए वे सात श्लोकों तक प्रश्न पूछते जाते हैं।

अपि वाकुशलं किञ्चिद्गृहेषु गृहमेधिनि ।
धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

अपि—मुझे आश्चर्य हो रहा है; वा—या तो; अकुशलम्—अशुभ; किञ्चित्—कुछ; गृहेषु—घर में; गृह-मेधिनि—गृहस्थ जीवन में अनुरक्त हे मेरी पत्नी; धर्मस्य—धर्म का; अर्थस्य—आर्थिक दशा का; कामस्य—इच्छापूर्ति का; यत्र—घर पर; योगः—ध्यान का फल; हि—निश्चय ही; अयोगिनाम्—जो अध्यात्मवादी नहीं हैं उनका।

हे गृहस्थ जीवन में अनुरक्त मेरी पत्नी! यदि कोई गृहस्थ जीवन में धर्म, अर्थ तथा काम का समुचित पालन करता है, तो उसके कार्यकलाप एक अध्यात्मवादी (योगी) के ही समान श्रेष्ठ होते हैं। मुझे आश्चर्य है कि क्या इन नियमों के पालन में कोई त्रुटि आ गई है?

तात्पर्य : इस श्लोक में कश्यपमुनि ने अपनी पत्नी अदिति को *गृहमेधिनि* कहकर सम्बोधित किया है, जिसका अर्थ होता है ''इन्द्रियतृप्ति के लिए जो गृहस्थ जीवन से संतुष्ट है।'' सामान्यतया जो लोग गृहस्थ आश्रम में रह रहे हैं, वे भौतिक लाभ के लिए किये गये कर्मक्षेत्र में इन्द्रियतृप्ति का अनुगमन करते हैं। ऐसे गृहमेधियों का एक ही जीवनलक्ष्य होता है—इन्द्रियतृप्ति। इसीलिए कहा गया है—*यन्मैथुनादिगृहमेधि-सुखं हि तुच्छम्*—गृहस्थ जीवन इन्द्रियतृप्ति पर आधारित है; अतएव इससे प्राप्य प्रसन्नता अत्यल्प होती है। फिर भी वैदिक विधि इतनी सारगर्भित है कि गृहस्थ जीवन में भी मनुष्य *धर्म, अर्थ, काम* तथा *मोक्ष* के अनुसार अपने जीवन को व्यवस्थित कर सकता है। मनुष्य का लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना होना चाहिए, किन्तु चूँकि इन्द्रियतृप्ति को एकाएक नहीं छोड़ा जा सकता अतएव शास्त्रों में आदेश दिए हुए हैं कि किस प्रकार धर्म, अर्थ तथा काम के नियमों का पालन किया जाये। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में ही (१.२.९) कहा गया है—*धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते*—सारे वृत्ति-परक कार्य अन्ततोगत्वा मोक्ष के लिए हैं। उन्हें कभी भी भौतिकलाभ के लिए नहीं किया जाना चाहिए—जो लोग गृहस्थ हैं उन्हें यह नहीं सोचना चाहिए कि धर्म गृहस्थ की इन्द्रियतृप्ति की प्रक्रिया को सुधारने के निमित्त है। गृहस्थ जीवन आध्यात्मिक ज्ञान की उन्नति के लिए भी है, जिससे मनुष्य अन्ततोगत्वा भवबन्धन से मोक्ष प्राप्त कर सकता है। मनुष्य को जीवन के चरमलक्ष्य (तत्त्व जिज्ञासा) को समझने के उद्देश्य से गृहस्थ जीवन में टिके रहना चाहिए। तब गृहस्थ जीवन योगी-जीवन के समान ही श्रेष्ठ है। अतएव कश्यपमुनि ने अपनी पत्नी से पूछा कि क्या धर्म, अर्थ तथा काम के नियमों का शास्त्रीय आदेशों के अनुसार सही ढंग से पालन हो रहा है? ज्योंही मनुष्य शास्त्र के आदेशों से च्युत होता है त्योंही गृहस्थ जीवन का उद्देश्य तुरन्त ही समाप्त हो जाता है।

अपि वातिथयोऽभ्येत्य कुटुम्बासक्तया त्वया ।

गृहादपूजिता याताः प्रत्युत्थानेन वा क्वचित् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; वा—या तो; अतिथयः—मेहमान; अभ्येत्य—घर आकर; कुटुम्ब-आसक्तया—जो परिवार वालों के प्रति अत्यधिक आसक्त रहते हैं; त्वया—तुम्हारे द्वारा; गृहात्—घर से; अपूजिताः—ठीक से सत्कार न किये जाकर; याताः—चले गये; प्रत्युत्थानेन—खड़े होकर; वा—अथवा; क्वचित्—कभी-कभी।

मुझे आश्चर्य है कि कहीं तुम अपने परिवार के सदस्यों में अत्यधिक आसक्त रहने के कारण अचानक आए अतिथियों का ठीक से स्वागत नहीं कर पाईं और वे बिना सत्कार के ही वापस चले गये?

तात्पर्य : गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह अतिथियों का सत्कार करे, भले ही वे शत्रु ही क्यों न हों। जब कोई अतिथि घर पर आये तो खड़े होकर उसका सत्कार किया जाये और बैठने के लिए उसे आसन प्रदान किया जाये। यह आदेश है—*गृहे शत्रुमपि प्राप्तं विश्वस्तम् अकुतोभयम्*—यदि किसी के घर उसका शत्रु भी आये तो उसका इस तरह सत्कार किया जाये कि वह यह भूल जाये कि आतिथेय उसका शत्रु है। अपनी स्थिति के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि घर आये हुए अतिथि का उचित सत्कार करे। कम से कम उसे बैठने के लिए आसन तथा पीने के लिए एक गिलास पानी अवश्य दिया जाये जिससे अतिथि अप्रसन्न न हो। कश्यपमुनि ने अदिति से पूछा कि कहीं ऐसे अतिथियों का निरादर तो नहीं हुआ? अतिथि शब्द उस व्यक्ति का सूचक है, जो बिना बुलाये आये।

गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि ।
यदि निर्यान्ति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

गृहेषु—घर पर; येषु—जिस; अतिथयः—अनामंत्रित मेहमान; न—नहीं; अर्चिताः—स्वागत किये गये; सलिलैः अपि—कम से कम एक गिलास जल देकर के; यदि—यदि; निर्यान्ति—वापस चले जाते हैं; ते—ऐसा गृहस्थ जीवन; नूनम्—निस्सन्देह; फेरु-राज—सियारों का; गृह—घर; उपमाः—सदृश।

जिन घरों से मेहमान एक गिलास जल भेंट किए गए बिना वापस चले जाते हैं, वे घर खेतों के उन बिलों के समान हैं जिनमें सियार रहते हैं।

तात्पर्य : खेतों में साँपों तथा चूहों द्वारा बनाए गए बिल होते है, किन्तु यदि बिल बहुत बड़े हों तो माना जा सकता है कि वह सियार रहते होंगे। निस्सन्देह, ऐसे घरों में कोई आश्रय लेने नहीं जाता। इस तरह मनुष्यों के घर जिनमें अतिथियों का ठीक से स्वागत नहीं किया जाता वे सियारों के घरों के समान हैं।

अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति ।
त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; अग्नयः—अग्नि; तु—निस्सन्देह; वेलायाम्—अग्नियज्ञ में; न—नहीं; हुताः—डाला गया; हविषा—घी द्वारा; सति—हे सती; त्वया—तुम्हारे द्वारा; उद्विग्न-धिया—किसी चिन्ता के कारण; भद्रे—हे कल्याणी; प्रोषिते—घर से दूर था; मयि—जब मैं; कर्हिचित्—कभी-कभी।

हे सती तथा शुभे! जब मैं घर से अन्य स्थानों को चला गया तो क्या तुम इतनी चिन्तित थीं कि अग्नि में घी की आहुति भी नहीं दे सकीं?

यत्पूजया कामदुघान्याति लोकान्गृहान्वितः ।
ब्राह्मणोऽग्निश्च वै विष्णोः सर्वदेवात्मनो मुखम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

यत्-पूजया—अग्नि तथा ब्राह्मणों की पूजा द्वारा; काम-दुघान्—इच्छाओं को पूरा करने वाला; याति—जो जाता है; लोकान्—उच्च लोकों को; गृह-अन्वितः—गृहस्थ जीवन के प्रति आसक्त; ब्राह्मणः—ब्राह्मणों; अग्निः च—तथा अग्नि; वै—निस्सन्देह; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; सर्व-देव-आत्मनः—सारे देवताओं का आत्मा; मुखम्—मुख।

एक गृहस्थ अग्नि तथा ब्राह्मणों की पूजा करके उच्च लोकों में निवास करने के वांछित लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है क्योंकि यज्ञ की अग्नि तथा ब्राह्मणों को समस्त देवताओं के परमात्मा स्वरूप भगवान् विष्णु का मुख माना जाना चाहिए।

तात्पर्य : वैदिक प्रथा के अनुसार अग्नियज्ञ घी, अन्न, फल, फूल इत्यादि की आहुति देने के लिए किया जाता है, जिससे भगवान् विष्णु इन्हें खाकर सन्तुष्ट हों। *भगवद्गीता* (९.२६) में भगवान् कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः ॥

"यदि कोई मुझे प्रेम तथा भक्ति के साथ एक पत्ती, एक फूल, फल या जल अर्पित करता है, तो मैं उसे ग्रहण करता हूँ।" अतएव यज्ञ-अग्नि में ये सभी वस्तुएँ अर्पित की जाने से भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाएँगें। इसी प्रकार ब्राह्मण-भोजन की भी संस्तुति की जाती है क्योंकि जब ब्राह्मण लोग यज्ञ के पश्चात् बचे हुए भव्य भोजन को खाते हैं, तो इससे एक प्रकार से साक्षात् भगवान् विष्णु भोजन करते होते हैं। अतएव वैदिक सिद्धान्त संस्तुति करते हैं कि प्रत्येक उत्सव या पर्व पर अग्नि में आहुतियाँ

डाली जाये और ब्राह्मणों को खाने के लिए अच्छा भोजन दिया जाय। ऐसे कार्यों से गृहस्थ स्वर्गलोक तथा ऐसे ही अन्य उच्चलोकों को जाता है।

अपि सर्वे कुशलिनस्तव पुत्रा मनस्विनि ।
लक्षयेऽस्वस्थमात्मानं भवत्या लक्षणैरहम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अपि—चाहे तो; सर्वे—सभी; कुशलिनः—पूर्ण कुशलता के साथ; तव—तुम्हारे; पुत्राः—सारे पुत्र; मनस्विनि—हे विशाल हृदय वाली नारी; लक्षये—देखता हूँ; अस्वस्थम्—अशान्त; आत्मानम्—मन को; भवत्याः—तुम्हारे; लक्षणैः—लक्षणों से; अहम्—मैं।

हे मनस्विनि! तुम्हारे सारे पुत्र कुशलपूर्वक तो हैं? तुम्हारे म्लान मुख को देखकर मुझे लगता है कि तुम्हारा मन शान्त नहीं है। ऐसा क्यों है?

श्रीअदितिरुवाच

भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन्धर्मस्यास्य जनस्य च ।
त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन्गृहा इमे ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

श्री-अदितिः उवाच—श्रीमती अदिति ने कहा; भद्रम्—कल्याण हो; द्विज-गवाम्—ब्राह्मणों तथा गायों का; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; धर्मस्य अस्य—शास्त्र वर्णित धर्म का; जनस्य—लोगों का; च—तथा; त्रि-वर्गस्य—उन्नति की तीन विधियों (धर्म, अर्थ तथा काम) का; परम्—परम; क्षेत्रम्—क्षेत्र; गृहमेधिन्—हे गृहस्थ जीवन में आसक्त मेरे पति; गृहाः—तुम्हारा घर; इमे—ये सारी वस्तुएँ।

अदिति ने कहा : हे मेरे पूज्य ब्राह्मण पति! सारे ब्राह्मण, गाएँ, धर्म तथा अन्य लोग कुशलपूर्वक हैं। हे मेरे घर के स्वामी! धर्म, अर्थ तथा काम—ये तीनों गृहस्थ जीवन में ही फलते फूलते हैं जिसके फलस्वरूप यह जीवन सौभाग्य से पूर्ण होता है।

तात्पर्य : गृहस्थ जीवन में मनुष्य धर्म, अर्थ एवं काम के तीन सिद्धान्तों को शास्त्रों के नियमों के अनुसार विकसित कर सकता है किन्तु मोक्ष-प्राप्ति के लिए मनुष्य को गृहस्थ जीवन का त्याग करके आध्यात्मिक संन्यास ग्रहण करना चाहिए। कश्यपमुनि संन्यासी नहीं थे; अतएव उन्हें यहाँ एक बार ब्राह्मण तथा दूसरी बार *गृहमेधिन* सम्बोधित किया गया है। उनकी पत्नी अदिति ने उन्हें विश्वास दिलाया कि जहाँ तक गृहस्थ-जीवन का सम्बन्ध था, हर बात सु-चारु ढंग से हो रही थी और ब्राह्मणों तथा गायों को सम्मान तथा संरक्षण प्रदान किया जा रहा था। दूसरे शब्दों में, किसी प्रकार की परेशानी नहीं थी; गृहस्थ-जीवन ठीक तरह से उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा था।

अग्नयोऽतिथयो भृत्या भिक्षवो ये च लिप्सवः ।
सर्वं भगवतो ब्रह्मन्ननुध्यानान्न रिष्यति ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

अग्नयः—अग्नि की पूजा; अतिथयः—अतिथियों का स्वागत; भृत्याः—सेवकों को तुष्ट करना; भिक्षवः—भिखारियों को प्रसन्न रखना; ये—जो; च—तथा; लिप्सवः—वे जैसा चाहते हैं (वैसा ही उनका ध्यान रखा जाता है); सर्वम्—सारे के सारे; भगवतः—मेरे स्वामी आपका; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; अनुध्यानात्—निरन्तर ध्यान करने से; न रिष्यति—कुछ नहीं रह जाता (सब कुछ ठीक से हो जाता है)।

हे प्रिय पति! मैं अग्नि, अतिथि, सेवक तथा भिखारी इन सब की समुचित देखभाल करती रही हूँ। चूँकि मैं सदैव आपका चिन्तन करती रही हूँ अतएव धर्म में किसी प्रकार की उपेक्षा की सम्भावना नहीं रही।

को नु मे भगवन्कामो न सम्पद्येत मानसः ।
यस्या भवान्प्रजाध्यक्ष एवं धर्मान्प्रभाषते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

कः—क्या; नु—निस्सन्देह; मे—मेरा; भगवन्—हे स्वामी; कामः—इच्छा; न—नहीं; सम्पद्येत—पूरा किया जा सकता है; मानसः—मन के भीतर; यस्याः—मेरे; भवान्—साक्षात् आप; प्रजा-अध्यक्षः—प्रजापति; एवम्—इस प्रकार; धर्मान्—धार्मिक सिद्धान्तों की; प्रभाषते—बातें करते हैं।

हे स्वामी! जब आप प्रजापति हैं और धर्म के सिद्धान्तों के पालन में साक्षात् मेरे उपदेशक हैं, तो फिर मेरी इच्छाओं के पूरा न होने में क्या सम्भावना हो सकती है?

तवैव मारीच मनःशरीरजाः
प्रजा इमाः सत्त्वरजस्तमोजुषः ।
समो भवांस्तास्वसुरादिषु प्रभो
तथापि भक्तं भजते महेश्वरः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारा; एव—निस्सन्देह; मारीच—हे मरीचि के पुत्र; मनः-शरीर-जाः—आपके शरीर या मन से उत्पन्न (सारे असुर तथा देवता); प्रजाः—आपसे उत्पन्न; इमाः—ये सब; सत्त्व-रजः-तमः-जुषः—सतो, रजो तथा तमो गुणों से दूषित; समः—समान; भवान्—आप; तासु—उनमें से हर एक को; असुर-आदिषु—असुरों इत्यादि में; प्रभो—हे स्वामी; तथा अपि—फिर भी; भक्तम्—भक्तों को; भजते—परवाह करता है; महा-ईश्वरः—भगवान्, परम नियन्ता।

हे मरीचि पुत्र! आप महापुरुष होने के कारण असुरों तथा देवताओं के प्रति समभाव रखते हैं क्योंकि वे या तो आपके शरीर से उत्पन्न हैं या आपके मन से। वे सतो, रजो तथा तमो गुणों में से किसी न किसी गुण से युक्त हैं। लेकिन परम नियन्ता भगवान् समस्त जीवों पर समदर्शी होते हुए

भी भक्तों पर विशेष रूप से अनकूल रहते हैं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.२९) में भगवान् कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

यद्यपि भगवान् हर एक के प्रति समभाव रखने वाले हैं, किन्तु वे अपनी भक्ति करने वालों के प्रति विशेष उन्मुख रहते हैं। भगवान् कहते हैं—*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति*—हे कुन्तीपुत्र! तुम घोषित कर दो कि मेरा भक्त कभी विनष्ट नहीं होता। अन्यत्र भगवान् कृष्ण कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(*भगवद्गीता* ४.११)

वस्तुतः प्रत्येक व्यक्ति भगवान् को विभिन्न विधियों से प्रसन्न करना चाहता है, किन्तु प्रसन्न करने की उनकी विधि के अनुसार ही भगवान् उन्हें विभिन्न वर दे‌ते हैं। इस प्रकार अदिति ने अपने पति से विनय की कि चूँकि परम नियन्ता भी अपने भक्तों का पक्ष लेते हैं और कश्यप का अपना ही भक्तपुत्र इन्द्र संकट में है अतएव उन्हें चाहिए कि वे इन्द्र की को कृपा प्रदान करें।

तस्मादीश भजन्त्या मे श्रेयश्चिन्तय सुव्रत ।
हृतश्रियो हृतस्थानान्सपत्नैः पाहि नः प्रभो ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतएव; ईश—हे परमशक्तिशाली नियन्ता; भजन्त्याः—अपने सेवक का; मे—मेरा; श्रेयः—कल्याण; चिन्तय—जरा विचार करें; सु-व्रत—हे भद्र; हृत-श्रियः—ऐश्वर्यविहीन; हृत-स्थानान्—घर-बार से रहित; सपत्नैः—प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा; पाहि—रक्षा कीजिये; नः—हम सबकी; प्रभो—हे स्वामी।

अतएव हे भद्र स्वामी! अपनी दासी पर कृपा कीजिये। हमारे प्रतिद्वन्द्वी असुरों ने अब हमें ऐश्वर्य तथा घर-बार से विहीन कर दिया है। कृपा करके हमें संरक्षण प्रदान कीजिये।

तात्पर्य : देवताओं की माता अदिति ने कश्यपमुनि से अनुरोध किया कि वे देवताओं को संरक्षण प्रदान करें। जब हम देवताओं का नाम लेते हैं, तो उसमें उनकी माता भी सम्मिलित रहती हैं।

पैरैर्विवासिता साहं मग्ना व्यसनसागरे ।

ऐश्वर्यं श्रीर्यशः स्थानं हृतानि प्रबलैर्मम ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

परैः—अपने शत्रुओं द्वारा; विवासिता—अपने अपने घरों से निकाली जाकर; सा—वही; अहम्—मैं; मग्ना—डूबी हुई; व्यसन-सागरे—कष्ट के समुद्र में; ऐश्वर्यम्—ऐश्वर्य; श्रीः—सौन्दर्य; यशः—कीर्ति; स्थानम्—स्थान; हृतानि—छीने गये; प्रबलैः—अत्यन्त शक्तिशाली; मम—मेरा।

हमारे अत्यन्त शक्तिशाली शत्रु असुरों ने हमारा ऐश्वर्य, हमारा सौन्दर्य, हमारा यश यहाँ तक कि हमारा घर भी हमसे छीन लिया है। निस्सन्देह, हमें अब वनवास दे दिया गया है और हम विपत्ति के सागर में डूब रहे हैं।

यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन्ममात्मजाः ।
तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; तानि—हमारी सारी खोई वस्तुओं को; पुनः—फिर से; साधो—हे साधु पुरुष; प्रपद्येरन्—पुनः प्राप्त कर सकें; मम—मेरा; आत्मजाः—सन्तानें, पुत्र; तथा—उसी प्रकार; विधेहि—कृपा करके करें; कल्याणम्—कल्याण; धिया—विचारार्थ; कल्याण-कृत्-तम—हमारा कल्याण करने वाले सर्वोत्तम व्यक्ति आप।

हे श्रेष्ठ साधु, हे कल्याण करने वाले परम श्रेष्ठ! हमारी स्थिति पर विचार करें और मेरे पुत्रों को ऐसा वर दें जिससे वे अपनी खोई हुई वस्तुएँ फिर से प्राप्त कर सकें।

श्रीशुक उवाच
एवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाह स्मयन्निव ।
अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार से; अभ्यर्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; अदित्या—अदिति द्वारा; कः—कश्यपमुनि ने; ताम्—उससे; आह—कहा; स्मयन्—मुस्काते हुए; इव—के सदृश; अहो—ओह; माया-बलम्—माया का प्रभाव; विष्णोः—विष्णु की; स्नेह-बद्धम्—इस स्नेह से प्रभावित; इदम्—यह; जगत्—सारा संसार।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब अदिति ने कश्यपमुनि से इस प्रकार प्रार्थना की तो वे कुछ मुस्काये और उन्होंने कहा ''ओह! भगवान् विष्णु की माया कितनी प्रबल है, जिससे सारा संसार बच्चों के स्नेह से बँधा है।''

तात्पर्य : कश्यपमुनि अपनी पत्नी के कष्ट के प्रति निश्चित रूप से सहानुभूति रखते थे; फिर भी वे चकित थे कि सारा संसार स्नेह से किस प्रकार प्रभावित है।

क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः ।

कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

क्व—कहाँ है; देहः—यह भौतिक शरीर; भौतिकः—पाँच तत्त्व से बना; अनात्मा—जो आत्मा नहीं है; क्व—कहाँ है; च—भी; आत्मा—आत्मा; प्रकृतेः—भौतिक जगत के प्रति; परः—दिव्य; कस्य—किसका; के—कौन है; पति—पति; पुत्र-आद्याः—अथवा पुत्र इत्यादि; मोहः—मोह; एव—निस्सन्देह; हि—निश्चय ही; कारणम्—कारण।

कश्यपमुनि ने आगे कहा : यह पाँच तत्त्वों से बना भौतिक शरीर है क्या? यह आत्मा से भिन्न है। निस्सन्देह, आत्मा उन भौतिक तत्त्वों से सर्वथा भिन्न है जिनसे यह शरीर बना हुआ है। किन्तु शारीरिक आसक्ति के कारण ही किसी को पति या पुत्र माना जाता है। ये मोहमय सम्बन्ध अज्ञान के कारण उत्पन्न होते हैं।

तात्पर्य : आत्मा या जीव निश्चय ही शरीर से भिन्न है, जो पाँच भौतिक तत्त्वों का मेल है। यह सीधा-सादा तथ्य है, किन्तु यह तब तक समझ में नहीं आता जब तक किसी को आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त न हो। कश्यपमुनि अपनी पत्नी से स्वर्गलोक में मिले थे, किन्तु सारे ब्रह्माण्ड में तथा इस पृथ्वी पर भी यही एक भ्रान्त धारणा फैली हुई है। जीवों की विभिन्न कोटियाँ होती हैं, किन्तु उनमें से लगभग सभी देहात्मबुद्धि के वशीभूत होते हैं। दूसरे शब्दों में, इस भौतिक संसार के सारे जीव आध्यात्मिक शिक्षा से न्यूनाधिक विहीन होते हैं। किन्तु वैदिक सभ्यता तो आध्यात्मिक शिक्षा पर टिकी है और यही आध्यात्मिक शिक्षा वह विशेष मूलाधार है, जिस पर अर्जुन से *भगवद्गीता* का प्रवचन किया गया था। *भगवद्गीता* के प्रारम्भ में कृष्ण अर्जुन को यह समझने का उपदेश देते हैं कि आत्मा शरीर से भिन्न है—

देहिनोऽस्मिन यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

"जिस तरह देहधारी आत्मा इस शरीर में बचपन से युवावस्था तथा फिर वृद्धावस्था में जाता है उसी तरह मृत्यु के समय आत्मा किसी दूसरे शरीर में चला जाता है। आत्मसिद्ध जीव ऐसे परिवर्तन से मोह-ग्रस्त नहीं होता।" (*भगवद्गीता* २.१३)। दुर्भाग्यवश आधुनिक मानव सभ्यता में इस आध्यात्मिक शिक्षा का नितान्त अभाव है। कोई भी अपने असली हित को नहीं समझता जो भौतिक देह में नहीं अपितु आत्मा में निहित रहता है। शिक्षा का अर्थ है आध्यात्मिक शिक्षा। आध्यात्मिक शिक्षा के बिना देहात्मबुद्धि में रहकर कठिन श्रम करना पशु के समान जीवन बिताना है। *नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये* (*भागवत* ५.५.१)। लोग आत्मा के बारे में शिक्षा की परवाह न

करते हुए केवल शारीरिक सुविधाओं के लिए कठिन श्रम करते हैं। इस प्रकार वे अत्यन्त संकटाकीर्ण सभ्यता में रह रहे हैं क्योंकि यह तथ्य है कि आत्मा को एक शरीर से दूसरे में देहान्तर करना होता है (*तथा देहान्तरप्राप्ति:*)। आध्यात्मिक शिक्षा के बिना लोग अंधकार में रहते हैं और वे यह नहीं जानते कि इस देह के विनष्ट होने पर उनका क्या होगा। वे अन्धे बनकर काम करते हैं और अन्धे नेता ही उनका मार्गदर्शन करते हैं। *अन्धा यथान्धैरुपनीयमानास्तेऽपीशतन्त्र्मा् उरुदाम्नि बद्धा:* (*भागवत* ७.५.३१)। मूर्ख व्यक्ति यह नहीं जानता कि वह पूरी तरह भौतिक प्रकृति के बन्धन में है और मृत्यु के बाद प्रकृति उस पर एक विशेष प्रकार की देह थोपेगी जिसे उसे स्वीकार करना होगा। वह यह नहीं जानता कि भले ही इस वर्तमान शरीर में वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यक्ति क्यों न हो, किन्तु हो सकता है कि अगले जन्म में उसे प्रकृति के गुणों अन्तर्गत अपने कार्यों से अज्ञान के कारण पशु या वृक्ष का शरीर धारण करना पड़े। अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे जीवों को आध्यात्मिक शरीर का असली ज्ञान प्रदान करने का प्रयास कर रहा है। इस आन्दोलन को समझ पाना कठिन नहीं है और लोगों को चाहिए कि इसका लाभ उठायें क्योंकि यह उन्हें अनुत्तरदायित्वपूर्ण संकटमय जीवन से बचा लेगा।

उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनम् ।
सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

उपतिष्ठस्व—पूजने का प्रयास करो; पुरुषम्—परम पुरुष को; भगवन्तम्—भगवान् को; जनार्दनम्—समस्त शत्रुओं का वध कर सकने वाले को; सर्व-भूत-गुहा-वासम्—हर एक के हृदय में वास करने वाले; वासुदेवम्—वसुदेव के पुत्र, सर्वव्यापी वासुदेव कृष्ण को; जगत्-गुरुम्—सारे संसार के गुरु तथा शिक्षक को।

हे अदिति! तुम उन भगवान् की भक्ति में लगो जो हर एक के स्वामी हैं, जो हर एक के शत्रुओं का दमन करने वाले हैं तथा जो हर एक के हृदय के भीतर आसीन रहते हैं। वे ही परम पुरुष, श्रीकृष्ण या वासुदेव, सब को शुभ वरदान दे सकते हैं क्योंकि वे विश्व के स्वामी हैं।

तात्पर्य : कश्यपमुनि ने इन शब्दों के द्वारा अपनी पत्नी को शान्त करना चाहा। अदिति ने अपने भौतिकतावादी पति से याचना की थी। निस्सन्देह, यह अति उत्तम है लेकिन वास्तव में किसी का भौतिकतावादी सम्बन्धी उसकी कोई भलाई नहीं कर सकता। यदि कोई भलाई की जा सकती है, तो वह भगवान् वासुदेव द्वारा ही की जाती है। इसलिए कश्यपमुनि ने अपनी पत्नी अदिति को उपदेश दिया कि वह भगवान् वासुदेव की पूजा करनी शुरू कर दे जो हर एक के हृदय के भीतर आसीन हैं। वे

सबके मित्र हैं और जनार्दन कहे जाते हैं क्योंकि वे समस्त शत्रुओं का विनाश कर सकते हैं। भौतिक प्रकृति के तीन गुण हैं—सतो, रजो तथा तमो और प्रकृति के भी ऊपर दूसरा जगत है, जो *शुद्ध-सत्त्व* कहलाता है। भौतिक जगत में सतोगुण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, किन्तु भौतिक कल्मष के कारण कभी-कभी सतोगुण भी रजो तथा तमो गुणों से पराजित हो जाता है। किन्तु जब कोई व्यक्ति इन गुणों की स्पर्धा को पार करके अपने को भक्ति में लगाता है, तो वह प्रकृति के तीनों गुणों से ऊपर उठ जाता है। उस दिव्य अवस्था में वह शुद्ध चेतना को प्राप्त होता है। *सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव शब्दितम्* (*भागवत* ४.३.२३)। भौतिक प्रकृति के ऊपर वह पद है, जो वसुदेव कहलाता है अर्थात् भौतिक कल्मष से मुक्ति। केवल इसी पद पर मनुष्य को भगवान् वासुदेव की अनुभूति हो सकती है। इस प्रकार वसुदेव पद आध्यात्मिक आवश्यकता की पूर्ति करता है। *वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।* जब मनुष्य को वासुदेव अर्थात् भगवान् की अनुभूति हो जाती है, तो वह अत्यन्त महान् बन जाता है।

जैसी कि *भगवद्गीता* (१०.१०) में पुष्टि हुई है, परमात्मा (वासुदेव) हर एक के हृदय में स्थित हैं। भगवान् कहते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

''जो लोग निरन्तर भक्ति में लगे रहते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी पूजा करते हैं उन्हें मैं वह बुद्धि देता हूँ जिससे वे मेरे पास आ सकें।''

ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति

''हे अर्जुन! भगवान् हर एक के हृदय में स्थित हैं'' (*भगवद्गीता* १८.६१)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

''ऋषिगण मुझे समस्त यज्ञों तथा तपस्याओं का चरम प्रयोजन, समस्त लोकों तथा देवताओं का परमेश्वर तथा समस्त जीवों का उपकारी तथा शुभचिन्तक जानकर भौतिक क्लेशों के चंगुल से शान्ति प्राप्त करते हैं'' (*भगवद्गीता* ५.२९)

जब कभी कोई परेशान हो तो उसे वासुदेव कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

वे भक्त को इन सारी कठिनाइयों को पार करने तथा भगवद्धाम जाने की बुद्धि प्रदान करेंगे। कश्यपमुनि ने अपनी पत्नी को वासुदेव कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने की सलाह दी जिससे उसकी सारी समस्याएँ सरलता से हल हो जाँय। इस प्रकार कश्यपमुनि एक आदर्श गुरु थे। वे इतने मूर्ख नहीं थे कि वे अपने आप को ईश्वर के समकक्ष एक महापुरुष के रूप में प्रस्तुत करते। वस्तुत: वे प्रामाणिक गुरु थे क्योंकि उन्होंने अपनी पत्नी को वासुदेव के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने की सलाह दी। जो व्यक्ति अपने अधीनस्थ या शिष्य को वासुदेव की पूजा करने का उपदेश देता है, वह सचमुच प्रामाणिक गुरु है। इस प्रसंग में *जगद्गुरुम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कश्यपमुनि ने झूठे ही अपने को जगद्गुरु घोषित नहीं किया यद्यपि वे वास्तव में जगद्गुरु थे क्योंकि उन्होंने वासुदेव के पक्ष का समर्थन किया। वस्तुत: वासुदेव ही जगद्गुरु हैं जैसाकि यहाँ स्पष्ट कहा गया है (*वासुदेवं जगद्गुरुम्*)। जो वासुदेव के उपदेशों की अर्थात् *भगवद्गीता* की शिक्षा देता है, वह *वासुदेवं जगद्गुरुम्* जैसा ही होता है। किन्तु जब कोई इस उपदेश की यथारूप शिक्षा नहीं देता किन्तु अपने आपको जगद्गुरु घोषित करता है, तो वह जनता को मात्र ठगता है। कृष्ण ही जगद्गुरु हैं और जो कृष्ण की ओर से यथारूप में कृष्ण के उपदेश की शिक्षा देता है उसे जगद्गुरु माना जा सकता है। जो अपने सिद्धान्त स्वयं गढ़ता है उसे जगद्गुरु नहीं माना जा सकता; वह झूठे ही जगद्गुरु बन बैठता है।

स विधास्यति ते कामान्हरिर्दीनानुकम्पन: ।
अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

स:—वह (वासुदेव); विधास्यति—निश्चय ही पूरा करेगा; ते—तुम्हारी; कामान्—इच्छाएँ; हरि:—भगवान्; दीन—दुखिया पर; अनुकम्पन:—अत्यन्त कृपालु; अमोघा—अच्युत; भगवत्-भक्ति:—भगवान् की भक्ति; न—नहीं; इतरा—भगवद्भक्ति के अतिरिक्त कुछ भी; इति—इस प्रकार; मति:—अभिमत; मम—मेरा।

दीनों पर अत्यन्त दयालु भगवान् तुम्हारी सारी इच्छाओं को पूरा करेंगे क्योंकि उनकी भक्ति अच्युत है। भक्ति के अतिरिक्त अन्य सारी विधियाँ व्यर्थ हैं। ऐसा मेरा मत है।

तात्पर्य : मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं—*अकाम, मोक्षकाम* तथा *सर्वकाम*। जो इस जगत से मोक्ष पाना चाहता है, वह *मोक्षकाम* है; जो इस जगत का पूरा-पूरा भोग करना चाहता हे वह *सर्वकाम* कहलाता है, किन्तु जिसने सारी इच्छाएँ पहले ही पूरी कर ली हैं और अब जिसे कोई भौतिक इच्छा नहीं सताती वह अकाम कहलाता है। भक्त को कोई इच्छा नहीं होती। *सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन*

निर्मलम्। वह शुद्ध है और भौतिक इच्छाओं से मुक्त होता है। मोक्षकामी परब्रह्म में विलीन होकर मोक्ष प्राप्त करना चाहता है अतएव ब्रह्म में विलीन होने की इस इच्छा के कारण वह अभी शुद्ध नहीं हुआ होता और जहाँ *मोक्षकामी* ही अशुद्ध हों वहाँ कर्मियों के विषय में क्या कहा जाये जिन्हें अनेक इच्छाओं की पूर्ति करनी होती है? फिर भी शास्त्रों का कथन है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

''चाहे कोई सब कुछ चाहता हो या कुछ भी न चाहता हो या वह भगवान् में विलीन होने की इच्छा करता हो, वह बुद्धिमान् तभी है यदि वह दिव्य प्रेमाभक्ति द्वारा भगवान् कृष्ण की पूजा करता है'' (*भागवत* २.३.१०)।

कश्यपमुनि ने देखा कि उनकी पत्नी अदिति में अपने पुत्रों के भौतिक कल्याण के लिए कुछ इच्छाएँ हैं फिर भी उन्होंने उन्हें भगवान् की भक्ति करने की सलाह दी। दूसरे शब्दों में, चाहे कोई कर्मी हो या ज्ञानी अथवा योगी हो या भक्त, उसे सदा वासुदेव के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए और उनकी दिव्य प्रेमाभक्ति करनी चाहिए जिससे उसकी सारी इच्छाएँ पूरी हो सकें। कृष्ण *दीन-अनुकम्पन* हैं—वे सब पर परम दयालु रहते हैं। अतएव यदि कोई अपनी भौतिक इच्छाएँ पूरी करना चाहता है, तो कृष्ण उसकी सहायता करते हैं। निस्सन्देह, यदि भक्त अत्यन्त निष्ठावान् होता है, तो भगवान् कभी कभी उस पर विशेष कृपा करके उसकी भौतिक इच्छाएँ पूरी करने से इनकार कर देते हैं और सीधे उसे अनन्य शुद्ध भक्ति का आशीर्वाद देते हैं। *चैतन्यचरितामृत* में (आदि २२.३८-३९) कहा गया है—

कृष्ण कहे—'आमा भजे, मागे विषय-सुख

अमृत छाडि' विष मागे—एइ बड़ मूर्ख

आमि—विज्ञ, एइ मूर्खे 'विषय' केने दिब?

स्वचरणामृत दिया 'विषय' भुलाइब

कृष्ण कहते हैं ''यदि कोई मेरी दिव्य प्रेमा-भक्ति में लगा रहकर साथ ही भौतिक भोग का ऐश्वर्य चाहता है, तो वह बहुत बड़ा मूर्ख है। वह निस्सन्देह ऐसे पुरुष के तुल्य है, जो विषपान करने के लिए

अमृत छोड़ देता है। चूँकि मैं अत्यन्त बुद्धिमान् हूँ अतएव मैं इस मूर्ख को भौतिक सम्पन्नता क्यों दूँ? मैं तो उसे अपने चरणकमलों की शरण का अमृत ग्रहण करने तथा मोहमय भौतिक भोग को भूलने के लिए प्रेरित करूँगा।'' यदि भक्त किसी भौतिक इच्छा के साथ-साथ कृष्ण के चरणकमलों में निष्ठापूर्वक अपने मन को लगाना चाहता है, तो कृष्ण उसे सीधे शुद्ध भक्ति प्रदान कर सकते हैं और उसकी सारी भौतिक इच्छाओं तथा सम्पत्ति को हर सकते हैं। यह भक्तों के प्रति भगवान् का विशेष अनुग्रह होता है। अन्यथा यदि कोई कृष्ण की भक्ति करता है, किन्तु फिर भी भौतिक इच्छाएँ पूरी करना चाहता है, तो वह ध्रुव महाराज के ही समान सारी भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो सकता है, किन्तु इसमें कुछ समय लग सकता है किन्तु यदि कोई निष्ठावान् भक्त मात्र कृष्ण के चरणकमलों को चाहता है, तो कृष्ण उसे शुद्धभक्ति प्रदान करते हैं।

श्रीअदितिरुवाच
केनाहं विधिना ब्रह्मन्नुपस्थास्ये जगत्पतिम् ।
यथा मे सत्यसङ्कल्पो विदध्यात्स मनोरथम् ॥ २२॥

शब्दार्थ

श्री-अदितिः उवाच—श्रीमती अदिति प्रार्थना करने लगीं; केन—किसके द्वारा; अहम्—मैं; विधिना—विधानों द्वारा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; उपस्थास्ये—प्रसन्न कर सकती हूँ; जगत्-पतिम्—ब्रह्माण्ड के स्वामी, जगन्नाथ को; यथा—जिससे; मे—मेरा; सत्य-सङ्कल्पः—इच्छापूर्ति; विदध्यात्—पूरा करे; सः—वह (भगवान्); मनोरथम्—इच्छाएँ, कामनाएँ।

श्रीमती अदिति ने कहा : हे ब्राह्मण! मुझे वह विधि-विधान बतलायें जिससे मैं जगन्नाथ की पूजा कर सकूँ और भगवान् मुझसे प्रसन्न होकर मेरी समस्त इच्छाओं को पूरा कर दें।

तात्पर्य : कहा गया है ''आपन चेती होत नहिं प्रभु चेती तत्काल।'' इस तरह कोई मनुष्य अनेक वस्तुएँ चाह सकता है, किन्तु जब तक भगवान् इन इच्छाओं को पूरा नहीं करते तब तक वे पूरी नहीं हो पातीं। इच्छा की पूर्ति सत्यसङ्कल्प कहलाती है। यह शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अदितिने अपने आप को आप को अपने पति की दया पर छोड़ दिया जिससे वे उसे ऐसे आदेश दे सकें जिनसे वह भगवान् की पूजा करके अपनी सारी इच्छाओं की पूर्ति कर सके। शिष्य को पहले तय करना चाहिए कि मैं परमेश्वर की पूजा करूँगा; तभी गुरु अपने शिष्य को सही निर्देश देगा। कोई अपने गुरु के ऊपर शासन नहीं चला सकता जिस प्रकार रोगी वैद्य से किसी दवा-विशेष की मांग नहीं कर सकता। यही भगवान् की पूजा का शुभारम्भ है। जैसाकि *भगवद्गीता* (७.१६) में पुष्टि की गई है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जना: सुकृतिनोऽर्जुन।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

'हे भरतश्रेष्ठ! चार प्रकार के शुद्ध लोग मेरी भक्ति करते हैं—आर्त, धन के इच्छुक, जिज्ञासु तथा ब्रह्मज्ञान की खोज करने वाले। अदिति *आर्त* अर्थात् विपदाग्रस्त थीं। वे अत्यन्त दुखी थीं क्योंकि उनके पुत्र देवतागण हर वस्तु से वंचित हो चुके थे। अत: वे अपने पति कश्यपमुनि के निर्देशन में भगवान् की शरण लेना चाह रही थी।

आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम् ।
आशु तुष्यति मे देव: सीदन्त्या: सह पुत्रकै: ॥ २३॥

शब्दार्थ

आदिश—मुझे उपदेश दें; त्वम्—हे मेरे पति; द्विज-श्रेष्ठ—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ; विधिम्—विधि-विधानों को; तत्—भगवान्; उपधावनम्—पूजा की विधि; आशु—शीघ्र; तुष्यति—प्रसन्न हो जाता है; मे—मुझ पर; देव:—भगवान्; सीदन्त्या:—अब शोक करते; सह—साथ; पुत्रकै:—अपने सारे पुत्र देवताओं के।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! कृपा करके मुझे भगवान् की भक्तिपूर्वक पूजा की पूर्ण विधि का उपदेश दें जिससे भगवान् मुझ पर तुरन्त ही प्रसन्न हो जायें और मुझे मेरे पुत्रों सहित इस अत्यन्त संकटपूर्ण परिस्थिति से उबार लें।

तात्पर्य : कभी-कभी अल्पज्ञ व्यक्ति यह पूछते हैं कि क्या आध्यात्मिक उन्नति हेतु भक्ति करने के लिए उन्हें गुरु के पास जाकर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इसका उत्तर यहाँ दिया गया है—यहीं क्यों, *भगवद्गीता* में भी जहाँ अर्जुन ने कृष्ण को अपना गुरु मान लिया हैं (*शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्*)। वेदों का भी यह उपदेश है—*तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत*—यदि कोई सचमुच आध्यात्मिक जीवन में उन्नति का इच्छुक है, तो उसे समुचित मार्गदर्शन के लिए गुरु बनाना चाहिए। भगवान् कहते हैं कि मनुष्य को आचार्य की पूजा करनी चाहिए क्योंकि वह भगवान् का प्रतिनिधि होता है (*आचार्यं मां विजानीयात्*)। मनुष्य को यह अवश्य समझ लेना चाहिए। *चैतन्यचरितामृत* में कहा गया है कि गुरु भगवान् की अभिव्यक्ति होता है। अतएव शास्त्रों में प्राप्य सभी प्रमाणों तथा भक्तों के व्यावहारिक आचरण के आधार पर मनुष्य को कोई बनाना चाहिए। अदिति ने अपने पति को अपना गुरु मान लिया जिससे वे उसका मार्गदर्शन कर सकें कि किस तरह भगवान् की पूजा करके आध्यात्मिक चेतना या भक्ति में प्रगति करनी चाहिए।

श्रीकश्यप उवाच
एतन्मे भगवान्पृष्टः प्रजाकामस्य पद्मजः ।
यदाह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

श्री-कश्यपः उवाच—कश्यपमुनि ने कहा; एतत्—यह; मे—मेरे द्वारा; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; पृष्टः—पूछे जाने पर; प्रजा-कामस्य—सन्तान की इच्छा से; पद्म-जः—कमल पुष्प से उत्पन्न ब्रह्माजी ने; यत्—जो भी; आह—कहा; ते—तुमको; प्रवक्ष्यामि—बताऊँगा; व्रतम्—पूजा के रूप में; केशव-तोषणम्—जिसमें भगवान् केशव तुष्ट होते हैं।.

श्री कश्यपमुनि ने कहा : जब मुझे सन्तान की इच्छा हुई तो मैंने कमलपुष्प से उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी से जिज्ञासा की। अब मैं तुम्हें वही विधि बताऊँगा जिसका उपदेश ब्रह्माजी ने मुझे दिया था और जिससे भगवान् केशव तुष्ट होते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर भक्तियोग की विधि की और अधिक व्याख्या की गई है। कश्यपमुनि अदिति को उसी विधि का उपदेश करना चाहते थे जिसकी संस्तुति ब्रह्माजी द्वारा भगवान् को तुष्ट करने के लिए की गई थी। यह महत्त्वपूर्ण है। गुरु अपने शिष्य को उपदेश देने के लिए किसी नई विधि का निर्माण नहीं करता। शिष्य अपने गुरु से ऐसी प्रामाणिक विधि प्राप्त करता है, जो उन्हें उनके गुरु द्वारा प्राप्त हुई होती है। यह शिष्य-परम्परा कहलाती है (*एवं परम्परा-प्राप्तं इमं राजर्षयो विदुः*)। भक्तियोग प्राप्त करने की यह प्रामाणिक वैदिक विधि है, जिससे भगवान् प्रसन्न किये जाते हैं। अतएव प्रामाणिक गुरु के पास जाना अनिवार्य है। प्रामाणिक गुरु वह है, जिसे अपने गुरु की कृपा प्राप्त हुई होती है। इसी तरह वह गुरु भी प्रामाणिक होता है क्योंकि उसे अपने गुरु की कृपा प्राप्त हुई होती है। यह *परम्परा* पद्धति कहलाती है। इस परम्परा पद्धति का पालन किये बिना गुरु से प्राप्त किए हुए मंत्र का उच्चारण निरर्थक होता है। आजकल न जाने कितने धूर्त गुरु हैं, जो आध्यात्मिक उन्नति के लिए नहीं, अपितु भौतिक उन्नति के लिए अपने मंत्र गढ़ लेते हैं। किन्तु यदि मंत्र गढ़ा हुआ रहता है, तो वह कभी सफल नहीं हो सकता। मंत्रों में तथा भक्तियोग में विशेष शक्ति होती है बशर्ते कि उन्हें प्रामाणिक व्यक्ति से प्राप्त किया जाये।

फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतम् ।
अर्चयेदरविन्दाक्षं भक्त्या परमयान्वितः ॥ २५॥

शब्दार्थ

फाल्गुनस्य—फाल्गुन मास (फरवरी-मार्च) को; अमले—शुक्लपक्ष; पक्षे—पखवारे में; द्वादश-अहम्—बारह दिनों तक, जिसका अन्त द्वादशी के दिन होता है; पयः-व्रतम्—केवल दूध ग्रहण करने का व्रत; अर्चयेत्—पूजा करे; अरविन्द-अक्षम्—कमलनयन भगवान् की; भक्त्या—भक्ति के साथ; परमया—शुद्ध; अन्वितः—से युक्त।

फाल्गुन मास (फरवरी-मार्च) के शुक्लपक्ष में द्वादशी तक के बारह दिनों तक मनुष्य को केवल दूध पर आश्रित रहकर व्रत रखना चाहिए और भक्तिपूर्वक कमलनयन भगवान् की पूजा करनी चाहिए।

तात्पर्य : भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु की पूजा करने का अर्थ है अर्चना मार्ग का अनुसरण करना।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

मनुष्य को भगवान् विष्णु या कृष्ण के अर्चाविग्रह की स्थापना करके, उन्हें वस्त्राभूषित करके, फूलों की मालाओं से अलंकृत करके, पूजन करना चाहिए और फल, फूल तथा घी-शक्कर और अन्न से तैयार किए गए सभी प्रकार के भोजन अर्पित करने चाहिए। और घंटी बजाते हुए उसकी आरती करनी चाहिए और दीप जलाकर अगुरु इत्यादि समर्पित करना चाहिए। यह भगवान् की पूजा (अर्चना) कहलाती है। यहाँ पर संस्तुति की गई है कि केवल दूध पीकर व्रत रखा जाये। यह पयोव्रत कहलाता है। जिस प्रकार हम लोग सामान्यतया एकादशी को अन्न न खाकर भक्ति करते हैं उसी तरह यह संस्तुति की जाती है कि द्वादशी के दिन दूध के अतिरिक्त और कुछ न खाया पिया जाये। *पयोव्रत* तथा भगवान् की अर्चन भक्ति शुद्ध भक्ति-भाव (*भक्त्या*) से की जानी चाहिए। भक्ति के बिना भगवान् की पूजा नहीं की जा सकती। *भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।* यदि कोई भगवान् को जानना चाहता है और भगवान् से सीधे जुड़ना चाहता है, तो वह यह जान कर कि वे क्या खाते हैं और किस तरह प्रसन्न होते हैं भक्तियोग का पालन करे। जैसी यहाँ पर भी संस्तुति की गई है—*भक्त्या परमयान्वितः*—मनुष्य को शुद्ध भक्ति से परिपूरित होना चाहिए।

सिनीवाल्यां मृदालिप्य स्नायात्क्रोडविदीर्णया ।
यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सिनीवाल्याम्—अमावस्या के दिन; मृदा—मिट्टी से; आलिप्य—शरीर में लेप करके; स्नायात्—नहाए; क्रोड-विदीर्णया—सूअर की दाढ़ से खोदी हुई; यदि—यदि; लभ्येत—उपलब्ध हो; वै—निस्सन्देह; स्रोतसि—प्रवाहमान नदी में; एतम् मन्त्रम्—इस मंत्र को; उदीरयेत्—उच्चारण करे।

यदि सूअर द्वारा खोदी गई मिट्टी उपलब्ध हो तो अमावस्या के दिन अपने शरीर पर इस मिट्टी का लेप करे और बहती नदी में स्नान करे। स्नान करते समय निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करे।

त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता ।
उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥ २७॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; देवि—हे माता पृथ्वी; आदि-वराहेण—वराह के रूप में भगवान् द्वारा; रसायाः—ब्रह्माण्ड के निचले भाग से; स्थानम्—स्थान; इच्छता—चाहते हुए; उद्धृता असि—ऊपर उठाई गई; नमः तुभ्यम्—तुम्हें मेरा नमस्कार है; पाप्मानम्—सारे पापकर्म तथा उनके फल; मे—मेरे; प्रणाशय—विनष्ट कर दो।

हे माता पृथ्वी! तुम्हारे द्वारा ठहरने के लिए स्थान पाने की इच्छा करने पर भगवान् ने वराह रूप में तुम्हें ऊपर निकाला था। मैं प्रार्थना करता हूँ कि कृपा करके मेरे पापी जीवन के सारे फलों को आप विनष्ट कर दें। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

निर्वर्तितात्मनियमो देवमर्चेत्समाहितः ।
अर्चायां स्थण्डिले सूर्ये जले वह्नौ गुरावपि ॥ २८॥

शब्दार्थ

निर्वर्तित—समाप्त; आत्म-नियमः—प्रक्षालन, मंत्रोच्चारण इत्यादि नैत्यिक कर्म; देवम्—भगवान् को; अर्चेत्—पूजे; समाहितः—पूर्ण मनोयोग से; अर्चायाम्—अर्चाविग्रहों को; स्थण्डिले—वेदी को; सूर्ये—सूर्य को; जले—जल को; वह्नौ—अग्नि को; गुरौ—गुरु को; अपि—निस्सन्देह।

तत्पश्चात् वह अपने नित्य तथा नैमित्तिक आध्यात्मिक कार्य करे और तब बड़े ही मनोयोग से भगवान् के अर्चाविग्रह की पूजा करे। साथ ही वेदी, सूर्य, जल, अग्नि तथा गुरु को भी पूजे।

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ।
सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥ २९॥

शब्दार्थ

नमः तुभ्यम्—मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ; भगवते—भगवान् को; पुरुषाय—परम पुरुष; महीयसे—सभी पुरुषों में श्रेष्ठ; सर्व-भूत-निवासाय—उस व्यक्ति को जो हर एक के हृदय में वास करता है; वासुदेवाय—भगवान् को जो सर्वत्र निवास करता है; साक्षिणे—सबके साक्षी।

हे भगवान्, हे महानतम, हे सब के हृदय में वास करने वाले तथा जिनमें सभी जीव वास करते हैं, हे प्रत्येक वस्तु के साक्षी, हे सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वव्यापी पुरुष वासुदेव! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ।
चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसङ्ख्यानहेतवे ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं आपको नमस्कार करता हूँ; अव्यक्ताय—जो भौतिक आँखों से नहीं देखे जाते; सूक्ष्माय—दिव्य; प्रधान-पुरुषाय—परम पुरुष को; च—भी; चतुः-विंशत्—चौबीस; गुण-ज्ञाय— तत्त्वों के ज्ञाता को; गुण-सङ्ख्यान—सांख्ययोग पद्धति का; हेतवे—मूल कारण।

हे परम पुरुष! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण आप भौतिक आँखों से कभी नहीं दिखते। आप चौबीस तत्त्वों के ज्ञाता हैं और आप सांख्य योगपद्धति के सूत्रपात-कर्ता हैं।

तात्पर्य : *चतुर्विंशद् गुण* अर्थात् चौबीस तत्त्व इस प्रकार हैं—पाँच स्थूल तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश), तीन सूक्ष्म तत्त्व (मन, बुद्धि तथा अहंकार), दस इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ), पाँच इन्द्रिय-विषय, तथा दूषित चेतना। ये *सांख्ययोग* के विषय हैं जिसका सूत्रपात भगवान् कपिलदेव द्वारा हुआ। इसी *सांख्ययोग* की स्थापना पुनः एक अन्य कपिल द्वारा हुई, किन्तु वे नास्तिक थे और उनकी पद्धति प्रामाणिक नहीं मानी जाती।

नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःशृङ्गाय तन्तवे ।
सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं आपको नमस्कार करता हूँ; द्वि-शीर्ष्णे—दो सिरों वाले; त्रि-पदे—तीन पाँव वाले; चतुः-शृङ्गाय—चार सींगों वाले; तन्तवे—विस्तार करने वाले; सप्त-हस्ताय—सात हाथों वाले; यज्ञाय—यज्ञ पुरुष को; त्रयी—वैदिक अनुष्ठानों के तीन गुण; विद्या-आत्मने—समस्त ज्ञान के स्वरूप भगवान् को; नमः—नमस्कार करता हूँ।

हे भगवान्! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ जिनके दो सिर (प्रायणीय तथा उदानीय), तीन पाँव (सवन-त्रय), चार सींग (चार वेद) तथा सात हाथ (सप्त छन्द यथा गायत्री) हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ जिनका हृदय तथा आत्मा तीनों वैदिक काण्डों (कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड तथा उपासना काण्ड) हैं तथा जो इन काण्डों को यज्ञ के रूप में विस्तार देते हैं।

नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ।
सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; शिवाय—शिवजी नामक अवतार को; रुद्राय—रुद्र नामक अंश को; नमः—नमस्कार; शक्ति-धराय—समस्त शक्तियों के आगार; च—तथा; सर्व-विद्या-अधिपतये—समस्त ज्ञान के भंडार; भूतानाम्—सारे जीवों के; पतये—परम स्वामी को; नमः—नमस्कार करता हूँ।

हे शिव, हे रुद्र! मैं समस्त शक्तियों के आगार, समस्त ज्ञान के भंडार तथा प्रत्येक जीव के स्वामी आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : भगवान् के अंश या अवतार को मनुष्य द्वारा नमस्कार करने की प्रथा है। शिवजी तमोगुण के अवतार हैं, जो प्रकृति के भौतिक गुणों में से एक है।

नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने ।
योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं आपको नमस्कार करता हूँ; हिरण्यगर्भाय—चार सिरों वाले हिरण्यगर्भ अर्थात् ब्रह्मा के रूप में स्थित; प्राणाय—हर एक के जीवन-स्रोत; जगत्-आत्मने—सम्पूर्ण विश्व के परमात्मा; योग-ऐश्वर्य-शरीराय—ऐश्वर्य तथा योग शक्ति से पूर्ण शरीर वाले; नमः ते—आपको नमस्कार करता हूँ; योग-हेतवे—समस्त योगशक्ति के आदि स्वामी को।

हिरण्यगर्भ रूप में स्थित, जीवन के स्त्रोत, प्रत्येक जीव के परमात्मा स्वरूप आपको मैं सादर नमस्कार करता हूँ। आपका शरीर समस्त योग के ऐश्वर्य का स्त्रोत है। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

नमस्त आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः ।
नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

नमः ते—आपको सादर नमस्कार करता हूँ; आदि-देवाय—आदि भगवान् को; साक्षि-भूताय—प्रत्येक के हृदय के भीतर हर बात के साक्षी स्वरूप; ते—तुम्हें; नमः—नमस्कार करता हूँ; नारायणाय—नारायण का अवतार धारण करने वाले; ऋषये—ऋषि को; नराय—मनुष्य के अवतार; हरये—भगवान् को; नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

मैं आदि भगवान्, प्रत्येक के हृदय में स्थित साक्षी तथा मनुष्य रूप में नर-नारायण ऋषि के अवतार आपको सादर नमस्कार करता हूँ। हे भगवान्! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये ।
केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं नमस्कार करता हूँ; मरकत-श्याम-वपुषे—जिनके शरीर का रंग मरकत मणि के समान श्यामल है; अधिगत-श्रिये—माता लक्ष्मी जिनके अधीन हैं; केशवाय—केशी असुर का वध करने वाले भगवान् केशव को; नमः तुभ्यम्—मैं आपको नमस्कार करता हूँ; नमः ते—पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ; पीत-वाससे—पीताम्बर वाले।

हे पीताम्बरधारी भगवान्! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ। आपके शरीर का रंग मरकत मणि जैसा है और आप लक्ष्मीजी को पूर्णतः वश में रखने वाले हैं। हे भगवान् केशव! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ ।
अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; सर्व-वर-दः—सभी प्रकार का वरदान देने वाले; पुंसाम्—सारे जीवों को; वरेण्य—हे परम पूज्य; वर-द-ऋषभ—समस्त वरदान देने वालों में सर्वशक्तिमान; अतः—इस कारण से; ते—तुम्हारा; श्रेयसे—समस्त कल्याण के स्रोत; धीराः—अत्यन्त गम्भीर; पाद-रेणुम् उपासते—चरणकमलों की धूल को पूजते हैं।.

हे परम पूज्य भगवान्, हे वरदायकों में श्रेष्ठ! आप हर एक की इच्छाओं को पूरा कर सकते हैं अतएव जो धीर हैं, वे अपने कल्याण के लिए आपके चरणकमलों की धूल को पूजते हैं।

अन्ववर्तन्त यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः ।
स्पृहयन्त इवामोदं भगवान्मे प्रसीदताम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

अन्ववर्तन्त—भक्ति में रत; यम्—जिसको; देवाः—सारे देवता; श्रीः च—तथा लक्ष्मीजी; तत्-पाद-पद्मयोः—उन भगवान् के चरणकमलों का; स्पृहयन्तः—चाहते हुए; इव—सदृश; आमोदम्—दैवी आनन्द; भगवान्—भगवान्; मे—मुझ पर; प्रसीदताम्—प्रसन्न हों।.

सारे देवता तथा लक्ष्मीजी भी उनके चरणकमलों की सेवा में लगी रहती हैं। निस्सन्देह, वे उन चरणकमलों की सुगन्ध का आदर करते हैं। ऐसे भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों।

एतैर्मन्त्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् ।
अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

एतैः मन्त्रैः—इन मंत्रों के उच्चारण करने से; हृषीकेशम्—समस्त इन्द्रियों के स्वामी भगवान् को; आवाहन—बुलाना; पुरस्कृतम्—सभी प्रकार से सम्मान करते हुए; अर्चयेत्—पूजा करे; श्रद्धया—श्रद्धा तथा भक्ति के साथ; युक्तः—लगा हुआ; पाद्य-उपस्पर्शन-आदिभिः—पूजा की साज-सामग्री (पाद्य, अर्घ्य, आदि) द्वारा।.).

कश्यप मुनि ने आगे कहा : इन सभी मंत्रों के उच्चारण द्वारा भगवान् का श्रद्धा तथा भक्ति के साथ स्वागत करके एवं उन्हें पूजा की वस्तुएँ (पाद्य तथा अर्घ्य) अर्पित करके मनुष्य को केशव अर्थात् हृषीकेश भगवान् कृष्ण की पूजा करनी चाहिए।

अर्चित्वा गन्धमाल्याद्यैः पयसा स्नपयेद्विभुम् ।
वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्शनैस्ततः ।
गन्धधूपादिभिश्चार्चेद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

अर्चित्वा—इस प्रकार पूजा करके; गन्ध-माल्य-आद्यैः—अगुरु, फूल की माला आदि के द्वारा.; पयसा—दूध से; स्नपयेत्—नहलाए; विभुम्—भगवान् को; वस्त्र—वस्त्र; उपवीत—जनेऊ; आभरण—गहने; पाद्य—चरणकमलों को धोने के लिए प्रयुक्त जल; उपस्पर्शनैः—स्पर्श द्वारा; ततः—तत्पश्चात्; गन्ध—सुगंध; धूप—धूपबत्ती; आदिभिः—इत्यादि से; च—तथा; अर्चेत्—पूजा करे; द्वादश-अक्षर-विद्यया—बारह अक्षरों वाले मंत्र से।.

सर्वप्रथम भक्त को द्वादश अक्षर मंत्र का उच्चारण करना चाहिए और फूल की माला, अगुरु इत्यादि अर्पित करने चाहिए। इस प्रकार से भगवान् की पूजा करने के बाद भगवान् को दूध से नहलाना चाहिए और उन्हें समुचित वस्त्र तथा यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहनाकर गहनों से सजाना चाहिए। तत्पश्चात् भगवान् के चरणों का प्रक्षालन करने के लिए जल अर्पित करके सुगंधित पुष्प, अगुरु तथा अन्य सामग्री से भगवान् की पुनः पूजा करनी चाहिए।

तात्पर्य : *द्वादशाक्षर मन्त्र है— ॐ नमोभगवते वासुदेवाय।* अर्चाविग्रह की पूजा करते हुए भक्त को चाहिए कि वह बाएँ हाथ से घंटी बजाए और पाद्य, अर्घ्य, वस्त्र, गन्ध, माला, आभरण, भूषण इत्यादि अर्पित करे। इस तरह भगवान् को दूध से नहलाकर वस्त्र पहनाना चाहिए और समस्त सामग्री से उनकी पुनः पूजा करनी चाहिए।

श्रृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति ।
ससर्पिः सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्रृतम्—पकाया गया; पयसि—दूध में; नैवेद्यम्—अर्चाविग्रह को भेंट; शालि-अन्नम्—चावल; विभवे—यदि उपलब्ध हो; सति—इस प्रकार से; स-सर्पिः—घी के साथ; स-गुडम्—गुड़ के साथ; दत्त्वा—उन्हें प्रदान करके; जुहुयात्—अग्नि में आहुतियाँ डाले; मूल-विद्यया—उसी द्वादशाक्षर मंत्र के उच्चारण के साथ-साथ।

यदि सामर्थ्य हो तो भक्त अर्चाविग्रह पर दूध में घी तथा गुड़ के साथ पकाये चावल चढ़ाए। उसी मूल मंत्र का उच्चारण करते हुए यह सामग्री अग्नि में डाली जाये।

निवेदितं तद्भक्ताय दद्याद्भुञ्जीत वा स्वयम् ।
दत्त्वाचमनमर्चित्वा ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

निवेदितम्—चढ़ाया हुआ प्रसाद; तत्-भक्ताय—उनके भक्त को; दद्यात्—दिया जाये; भुञ्जीत—खाये; वा—अथवा; स्वयम्—खुद; दत्त्वा आचमनम्—हाथ तथा मुखमार्जन के लिए जल देकर; अर्चित्वा—पूजा करके; ताम्बूलम्—पान; च—भी; निवेदयेत्—प्रदान करे।

उसे चाहिए कि वह सारा प्रसाद या उसका कुछ अंश किसी वैष्णव को दे और तब कुछ प्रसाद स्वयं ग्रहण करे। तत्पश्चात् अर्चाविग्रह को आचमन कराए और तब पान सुपारी चढ़ाकर फिर से भगवान् की पूजा करे।

जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद्दण्डवन्मुदा ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

जपेत्—मन ही मन उच्चारण करे; अष्टोत्तर-शतम्—एक सौ आठ बार; स्तुवीत—स्तुति करे; स्तुतिभिः—महिमा-स्तुतियों द्वारा; प्रभुम्—भगवान् को; कृत्वा—करके; प्रदक्षिणम्—प्रदक्षिणा; भूमौ—भूमि पर; प्रणमेत्—प्रणाम करे; दण्डवत्—साष्टांग भूमि पर लोटकर; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक।

तत्पश्चात् उसे चाहिए कि वह मुँह में १०८ बार मंत्र का जप करे और भगवान् की महिमा की स्तुतियाँ करे। तब वह भगवान् की प्रदक्षिणा करे और अन्त में परम सन्तोष तथा प्रसन्नतापूर्वक भूमि पर लोटकर (दण्डवत्) प्रणाम करे।

कृत्वा शिरसि तच्छेषां देवमुद्वासयेत्ततः ।
द्व्यवरान्भोजयेद्विप्रान्पायसेन यथोचितम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

कृत्वा—चढ़ा करके; शिरसि—माथे पर; तत्-शेषाम्—सारा अवशिष्ट (अर्चाविग्रह को चढ़ाया जल तथा फूल); देवम्—अर्चाविग्रह को; उद्वासयेत्—पवित्र स्थान में ले जाकर फेंक देना चाहिए; ततः—तत्पश्चात्; द्वि-अवरान्—कम से कम दो; भोजयेत्—खिलाए; विप्रान्—ब्राह्मणों को; पायसेन—खीर से; यथा-उचितम्—जैसा उचित हो।

अर्चाविग्रह पर चढ़ाये गये जल तथा सभी फूलों को अपने सिर से छूने के बाद उन्हें किसी पवित्र स्थान पर फेंक दे। तब कम से कम दो ब्राह्मणों को खीर का भोजन कराए।

भुञ्जीत तैरनुज्ञातः सेष्टः शेषं सभाजितैः ।
ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यां श्वो भूते प्रथमेऽहनि ॥ ४४ ॥
स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः ।
पयसा स्नापयित्वार्चेद्यावद्व्रतसमापनम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

भुञ्जीत—प्रसाद ग्रहण करे; तैः—उन ब्राह्मणों से; अनुज्ञातः—अनुमति लेकर; स-इष्टः—मित्रों तथा परिवार वालों के सहित; शेषम्—शेष बचा हुआ; सभाजितैः—उचित रूप से सम्मानित; ब्रह्मचारी—ब्रह्मचर्य व्रत का पालन; अथ—निस्सन्देह; तत्-

रात्र्याम्—उस रात में; श्वः भूते—सबेरा होने पर; प्रथमे अहनि—पहले दिन; स्नातः—स्नान किया हुआ; शुचिः—पवित्र होकर; यथा-उक्तेन—जैसाकि पहले कहा जा चुका है; विधिना—विधिपूर्वक; सु-समाहितः—एकाग्र होकर; पयसा—दूध से; स्नापयित्वा—अर्चाविग्रह को स्नान कराकर; अर्चेत्—पूजा करे; यावत्—जब तक; व्रत-समापनम्—पूजा की अवधि समाप्त न हो जाये।

जिन सम्मान्य ब्राह्मणों को भोजन कराया हो उनका भलीभाँति सत्कार करे और तब उनकी अनुमति से अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों सहित स्वयं प्रसाद ग्रहण करे। उस रात में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करे और दूसरे दिन प्रातः स्नान करने के बाद अत्यन्त शुद्धता तथा ध्यान के साथ अर्चाविग्रह को दूध से स्नान कराए और विस्तारपूर्वक पूर्वोक्त विधियों के अनुसार उनकी पूजा करे।

पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद्विष्ण्वर्चनादृतः ।
पूर्ववज्जुहुयादग्निं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

पयः-भक्षः—केवल दूध का पान करने वाला; व्रतम् इदम्—यह व्रत; चरेत्—सम्पन्न करे; विष्णु-अर्चन-आदृतः—अत्यन्त श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु की पूजा करते हुए; पूर्व-वत्—पहले की तरह; जुहुयात्—आहुतियाँ डाले; अग्निम्—अग्नि में; ब्राह्मणान्—ब्राह्मणों को; च अपि—भी; भोजयेत्—भोजन कराए।

केवल दूधपान करते हुए और श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु की पूजा करते हुए भक्त इस व्रत का पालन करे। उसे चाहिए कि वह अग्नि में हवन करे और पूर्वोक्त विधि से ब्राह्मणों को भोजन कराए।

एवं त्वहरहः कुर्याद्द्वादशाहं पयोव्रतम् ।
हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; तु—निस्सन्देह; अहः अहः—दिन प्रतिदिन; कुर्यात्—करना चाहिए; द्वादश-अहम्—बारह दिनों तक; पयः-व्रतम्—पयव्रत; हरेः आराधनम्—भगवान् की पूजा; होमम्—हवन करके; अर्हणम्—अर्चाविग्रह की पूजा; द्विज-तर्पणम्—भोजन कराकर ब्राह्मणों को प्रसन्न करना।

इस तरह बारह दिनों तक प्रतिदिन भगवान् का पूजन, नैत्यिक कर्म, हवन तथा ब्राह्मण-भोजन सम्पन्न कराकर यह पयोव्रत रखा जाये।

प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशीम् ।
ब्रह्मचर्यमधःस्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

प्रतिपत्-दिनम्—प्रतिपत् के दिन; आरभ्य—प्रारम्भ करके; यावत्—जब तक; शुक्ल—शुक्लपक्ष की; त्रयोदशीम्—तेरस (एकादशी के दो दिन बाद); ब्रह्मचर्यम्—पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन; अधः-स्वप्नम्—फर्श पर शयन; स्नानम्—स्नान; त्रि-सवनम्—तीन बार (प्रातः, सायं तथा दोपहर में); चरेत्—सम्पन्न करे।

प्रतिपदा से लेकर अगले शुक्लपक्ष की तेरस (शुक्ल त्रयोदशी) तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करे, फर्श पर सोये, प्रतिदिन तीन बार स्नान करे और इस व्रत को सम्पन्न करे।

वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा ।
अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

वर्जयेत्—न करे; असत्-आलापम्—सांसारिक विषयों पर वृथा बातचीत; भोगान्—इन्द्रियतृप्ति; उच्च-अवचान्—श्रेष्ठ या निकृष्ट; तथा—और; अहिंस्रः—ईर्ष्यारहित होकर; सर्व-भूतानाम्—सारे जीवों का; वासुदेव-परायणः—भगवान् वासुदेव का मात्र भक्त बनकर।

इस अवधि में सांसारिक प्रपंचों या इन्द्रियतृप्ति के विषय पर अनावश्यक चर्चा न चलाये, वह सारे जीवों की ईर्ष्या से पूर्णतया मुक्त रहे और भगवान् वासुदेव का शुद्ध एवं सरल भक्त बने।

त्रयोदश्यामथो विष्णोः स्नपनं पञ्चकैर्विभोः ।
कारयेच्छास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

त्रयोदश्याम्—तेरस को; अथो—तत्पश्चात्; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; स्नपनम्—स्नान कराना; पञ्चकैः—पञ्चामृत द्वारा; विभोः—भगवान्; कारयेत्—करे; शास्त्र-दृष्टेन—शास्त्रों द्वारा आदिष्ट; विधिना—विधि से; विधि-कोविदैः—विधि-विधानों को जानने वाले पुरोहितों की सहायता से।

तत्पश्चात् शास्त्रविद् ब्राह्मणों की सहायता से शास्त्रों के आदेशानुसार शुक्लपक्ष की तेरस को भगवान् विष्णु को पञ्चामृत (दूध, मट्ठा, घी, चीनी तथा शहद) से स्नान कराये।

पूजां च महतीं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ५१ ॥
सूक्तेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः ।
नैवेद्यं चातिगुणवद्दद्यात्पुरुषतुष्टिदम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

पूजाम्—पूजा; च—भी; महतीम्—अत्यन्त तड़क-भड़क वाला; कुर्यात्—करे; वित्त-शाठ्य—कंजूसी की मनोवृत्ति; विवर्जितः—त्यागकर; चरुम्—यज्ञ में डाला गया अन्न; निरूप्य—ठीक से देखकर; पयसि—दूध के साथ; शिपिविष्टाय—प्रत्येक जीव के हृदय में स्थित परमात्मा को; विष्णवे—विष्णु को; सूक्तेन—पुरुष-सूक्त नामक वैदिक मंत्रोच्चार से; तेन—उसके द्वारा; पुरुषम्—भगवान् की; यजेत—पूजा करे; सु-समाहितः—मनोयोग से; नैवेद्यम्—अर्चाविग्रह को चढ़ाया गया भोजन;

च—तथा; अति-गुण-वत्—समस्त सुस्वादु व्यंजन; दद्यात्—प्रदान करे; पुरुष-तुष्टि-दम्—भगवान् को अत्यन्त प्रसन्न करने वाली प्रत्येक वस्तु।

धन न खर्च करने की कंजूसी की आदत छोड़कर अन्तर्यामी भगवान् विष्णु की भव्य पूजा का आयोजन करे। मनुष्य को चाहिए कि वह अत्यन्त मनोयोग से घी में पकाये अन्न तथा दूध से आहुति (हव्य) तैयार करे और पुरुष-सूक्त मंत्रोच्चार करे और विविध स्वादों वाले भोजन भेंट करे। इस प्रकार मनुष्य को भगवान् का पूजन करना चाहिए।

आचार्यं ज्ञानसम्पन्नं वस्त्राभरणधेनुभिः ।
तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

आचार्यम्—गुरु को; ज्ञान-सम्पन्नम्—आध्यात्मिक ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा; वस्त्र-आभरण-धेनुभिः—वस्त्र, गहने तथा अनेक गायों सहित; तोषयेत्—तुष्ट करके; ऋत्विजः—गुरु द्वारा बताये गये पुरोहित; च एव—तथा; तत् विद्धि—उसे समझने का प्रयास करे; आराधनम्—पूजा; हरेः—भगवान् की।

मनुष्य को चाहिए कि वह वैदिक साहित्य में पारंगत गुरु (आचार्य) को तुष्ट करे और उनके सहायक पुरोहितों को (जो होता, उद्गाता, अध्वर्यु तथा ब्रह्म कहलाते हैं) तुष्ट करे। उन्हें वस्त्र, आभूषण तथा गाएँ देकर प्रसन्न करे। यही विष्णु-आराधन अनुष्ठान है।

भोजयेत्तान्गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते ।
अन्यांश्च ब्राह्मणाञ्छक्त्या ये च तत्र समागताः ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

भोजयेत्—प्रसाद बाँटे; तान्—उन सब को; गुण-वता—अच्छे भोजन से; सत्-अन्नेन—घी तथा दूध से बने भोजन से, जो अत्यन्त शुद्ध माना जाता है; शुचि-स्मिते—हे परम पवित्र स्त्री; अन्यान् च—अन्यों को भी; ब्राह्मणान्—ब्राह्मणों को; शक्त्या—यथाशक्ति; ये—जो; च—भी; तत्र—वहाँ (अनुष्ठानों में); समागताः—एकत्र।

हे परम पवित्र स्त्री! मनुष्य को चाहिए कि वह ये सारे अनुष्ठान विद्वान आचार्यों के निर्देशानुसार सम्पन्न करे और उन्हें तथा उनके पुरोहितों को तुष्ट करे। उसे चाहिए कि प्रसाद वितरण करके ब्राह्मणों को तथा वहाँ पर एकत्र हुए लोगों को भी तुष्ट करे।

दक्षिणां गुरवे दद्याद्दृत्विग्भ्यश्च यथार्हतः ।
अन्नाद्येनाश्वपाकांश्च प्रीणयेत्समुपागतान् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

दक्षिणाम्—धन या सोने का दान; गुरवे—गुरु को; दद्यात्—दे; ऋत्विग्भ्यः च—तथा गुरु द्वारा नियुक्त पुरोहितों को; यथा-अर्हतः—यथाशक्ति; अन्न-अद्येन—प्रसाद वितरण द्वारा; आश्व-पाकान्—चंडाल तक को जो कुत्ते का माँस खाने के आदी हैं; च—भी; प्रीणयेत्—प्रसन्न करे; समुपागतान्—अनुष्ठान में एकत्र होने के कारण।

मनुष्य को चाहिए कि गुरु तथा सहायक पुरोहितों को वस्त्र, आभूषण, गाएँ तथा कुछ धन का दान देकर प्रसन्न करे। तथा प्रसाद वितरण द्वारा वहाँ पर आये सभी लोगों को यहाँ तक कि सबसे अधम व्यक्ति चण्डाल (कुत्ते का माँस खाने वाले) को भी तुष्ट करे।

तात्पर्य : वैदिक प्रणाली के अनुसार यहाँ पर संस्तुत विधि के अनुसार बिना भेदभाव के प्रसाद-वितरण किया जाता है। चाहे कोई ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र, यहाँ तक कि अधमतम व्यक्ति चंडाल का भी प्रसाद लेने के लिए स्वागत करना चाहिए। किन्तु यदि चंडाल प्रसाद ग्रहण करे तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह नारायण या विष्णु बन गया है। नारायण जन-जन के हृदय में स्थित हैं, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं होता कि नारायण चंडाल या दरिद्र व्यक्ति हैं। दरिद्र व्यक्ति को नारायण के रूप में स्वीकार करने की मायावादी विचारधारा अत्यन्त ईर्ष्यापूर्ण तथा वैदिक सभ्यता में नास्तिकतावादी आन्दोलन है। इस प्रवृत्ति का सर्वथा परित्याग होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को प्रसाद ग्रहण करने का अवसर मिलना चाहिए, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हर व्यक्ति को नारायण बन जाने का अधिकार है।

भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनान्धकृपणादिषु ।
विष्णोस्तत्प्रीणनं विद्वान्भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

भुक्तवत्सु—भोजन कराने के बाद; च—भी; सर्वेषु—वहाँ पर उपस्थित सब को; दीन—अत्यन्त निर्धन; अन्ध—अन्धा; कृपण—जो ब्राह्मण नहीं है; आदिषु—इत्यादि; विष्णोः—अन्तर्यामी भगवान् विष्णु का; तत्—वह (प्रसाद); प्रीणनम्—प्रसन्न करते हुए; विद्वान्—इस दर्शन को जानने वाला; भुञ्जीत—स्वयं प्रसाद ग्रहण करे; सह—साथ; बन्धुभिः—मित्रों तथा सम्बन्धियों के।

मनुष्य को चाहिए कि वह दरिद्र, अन्धे, अभक्त तथा अब्राह्मण हर व्यक्ति को विष्णु-प्रसाद बाँटे। यह जानते हुए कि जब हर एक व्यक्ति पेट भरकर विष्णु-प्रसाद पा लेता है, तो भगवान् विष्णु परम प्रसन्न होते हैं, यज्ञकर्ता को अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों सहित प्रसाद ग्रहण करना चाहिए।

नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः ।

कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम् ॥ ५७॥

शब्दार्थ

नृत्य—नाच कर; वादित्र—बाजा (ढोल) बजाकर; गीतैः—तथा गाकर; च—भी; स्तुतिभिः—शुभ मंत्रोच्चार द्वारा; स्वस्ति-वाचकैः—स्तुति करके; कारयेत्—सम्पन्न करे; तत्-कथाभिः—भागवत, भगवद्गीता तथा इसी प्रकार का साहित्य सुनाकर; च—भी; पूजाम्—पूजा; भगवतः—भगवान् विष्णु की; अन्वहम्—प्रतिदिन (प्रतिपदा से त्रयोदशी तक)।

प्रतिपदा से त्रयोदशी तक इस अनुष्ठान को मनुष्य प्रतिदिन नाच, गाना, बाजा, स्तुति तथा शुभ मंत्रोच्चार एवं *श्रीमद्भागवत* के पाठ के साथ-साथ जारी रखे। इस प्रकार मनुष्य भगवान् की पूजा करे।

एतत्पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं परम् ।
पितामहेनाभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥ ५८॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; पयः-व्रतम्—पयोव्रत नामक अनुष्ठान; नाम—नामक; पुरुष-आराधनम्—भगवान् की पूजा विधि; परम्—श्रेष्ठ; पितामहेन—मेरे पितामह द्वारा; अभिहितम्—कही गई; मया—मेरे द्वारा; ते—तुमको; समुदाहृतम्—विस्तार के साथ वर्णित।

यह धार्मिक अनुष्ठान पयोव्रत कहलाता है, जिसके द्वारा भगवान् की पूजा की जा सकती है। यह ज्ञान मुझे अपने पितामह ब्रह्माजी से मिला और अब मैंने विस्तार के साथ इसका वर्णन तुमसे किया है।

त्वं चानेन महाभागे सम्यक्चीर्णेन केशवम् ।
आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम् ॥ ५९॥

शब्दार्थ

त्वम् च—तुम भी; अनेन—इस विधि से; महा-भागे—हे भाग्यशालिनी; सम्यक् चीर्णेन—भलीभाँति सम्पन्न करने पर; केशवम्—केशव को; आत्मना—अपने; शुद्ध-भावेन—शुद्ध मन से; नियत-आत्मा—अपने को वश में करते हुए; भज—पूजा करते रहो; अव्ययम्—भगवान् की, जो अक्षय हैं।

हे परम भाग्यशालिनी! तुम अपने मन को शुद्ध भाव में स्थिर करके इस पयोव्रत विधि को सम्पन्न करो और इस तरह अच्युत भगवान् केशव की पूजा करो।

अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम् ।
तपःसारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ॥ ६०॥

शब्दार्थ

अयम्—यह; वै—निस्सन्देह; सर्व-यज्ञ—सभी प्रकार का धार्मिक अनुष्ठान तथा यज्ञ; आख्यः—कहलाता है; सर्व-व्रतम्—सारे धार्मिक अनुष्ठान; इति—इस प्रकार; स्मृतम्—समझा जाकर; तपः-सारम्—सारी तपस्याओं का सार; इदम्—यह; भद्रे—हे उत्तम स्त्री; दानम्—दान के कार्य; च—तथा; ईश्वर—भगवान्; तर्पणम्—प्रसन्न करने की विधि।

यह पयोव्रत सर्वयज्ञ भी कहलाता है। दूसरे शब्दों में, इस यज्ञ को सम्पन्न कर लेने पर अन्य सारे यज्ञ स्वतः सम्पन्न हो जाते हैं। इसे समस्त अनुष्ठानों में सर्वश्रेष्ठ भी माना गया है। हे भद्रे! यह समस्त तपस्याओं का सार है और दान देने तथा परम नियन्ता को प्रसन्न करने की विधि है।

तात्पर्य : *आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्*—यह शिवजी का कथन पार्वती के प्रति है। भगवान् विष्णु की पूजा करना पूजा की परम विधि है और भगवान् विष्णु की इस पयोव्रत विधि से पूजा किस तरह की जानी चाहिए उसका वर्णन पूरी तरह किया गया है। जीवन का चरम लक्ष्य वर्णाश्रम धर्म द्वारा भगवान् विष्णु को प्रसन्न करना है। चार वर्णों तथा चार आश्रमों के वैदिक सिद्धान्त भगवान् विष्णु की पूजा के निमित्त हैं (*विष्णुराराध्यते पुंसां नान्यत् तत्तोष कारणम्*)। युग के अनुसार कृष्णभावनामृत आन्दोलन भी *विष्णु आराधनम्* है। *विष्णु आराधनम्* की *पयोव्रत* विधि बहुत काल पूर्व कश्यपमुनि ने अपनी पत्नी अदिति से स्वर्गलोक में कही थी और यही विधि आज भी धरालोक पर प्रामाणिक है। विशेषतया इस कलियुग में कृष्णभावनामृत आन्दोलन द्वारा स्वीकृत विधि सैकड़ों तथा हजारों विष्णु-मन्दिर (राधाकृष्ण, जगन्नाथ, बलराम, सीताराम, गौर-निताई आदि के मन्दिर) खोलने की है। ऐसे विष्णु-मन्दिरों में नियत पूजा सम्पन्न करना तथा इस तरह भगवान् की पूजा करना यहाँ पर संस्तुत पयोव्रत अनुष्ठान सम्पन्न करने के समान है। यह *पयोव्रत* अनुष्ठान शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से त्रयोदशी तक मनाया जाता है, किन्तु हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में विष्णु की पूजा प्रत्येक मन्दिर में चौबीस घण्टों की समयसारिणी के अनुसार की जाती है, जिसमें कीर्तन करने, हरे कृष्ण महामंत्र का जप करने, भगवान् विष्णु को स्वादिष्ट भोजन अर्पित करने तथा इस भोजन को वैष्णवों तथा अन्यों में वितरित करने का कार्य किया जाता है। ये प्रामाणिक गतिविधियाँ हैं और यदि कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्य इन नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करें तो उन्हें पयोव्रत का पालन करने जैसा लाभ प्राप्त होगा। इस तरह कृष्णभावनामृत आन्दोलन में सारे शुभ कार्यों यथा यज्ञ करना, दान देना, व्रत रखना, तपस्या करना इत्यादि का सार निहित है। इस आन्दोलन के सदस्यों को चाहिए कि पूर्वोक्त विधि का पालन निष्ठापूर्वक तत्काल करें। निस्सन्देह, सारे यज्ञ भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए हैं। *यज्ञै सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*—कलियुग में बुद्धिमान् लोग सङ्कीर्तन यज्ञ करते हैं। मनुष्यों को चाहिए कि इस विधि का दृढ़ता से पालन करें।

त एव नियमाः साक्षात्त एव च यमोत्तमाः ।
तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षजः ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; एव—निस्सन्देह; नियमाः—सारे विधि-विधान; साक्षात्—प्रत्यक्ष; ते—वे; एव—निस्सन्देह; च—भी; यम-उत्तमाः—इन्द्रियों को वश में करने की सर्वश्रेष्ठ विधि; तपः—तपस्या; दानम्—दान; व्रतम्—व्रत; यज्ञः—यज्ञ; येन—जिस विधि से; तुष्यति—प्रसन्न होता है; अधोक्षजः—भौतिक इन्द्रियों से अनुभव न हो सकने वाले भगवान्।

अधोक्षज नामक दिव्य भगवान् को प्रसन्न करने की यह सर्वोत्तम विधि है। यह समस्त विधि-विधानों में श्रेष्ठ है, यह सर्वश्रेष्ठ तपस्या है, दान देने की और यज्ञ की सर्वश्रेष्ठ विधि है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (१८.६६) में भगवान् कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

''सारे धर्मों को त्याग दो और मात्र मेरी शरण में आ जाओ। मैं सारे पापमय फलों से तुम्हारा उद्धार कर दूँगा। तुम डरो मत।'' जब तक भगवान् की इच्छानुसार उन्हें प्रसन्न नहीं कर लिया जाता तब तक मनुष्य को अपने कर्मों से कुछ भी शुभ फल प्राप्त नहीं होगा।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।

नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

''अपने पद के अनुसार किये गये मनुष्य के सारे वृत्तिपरक कार्य व्यर्थ के श्रम हैं यदि वे भगवान् के सन्देश के प्रति आकर्षण न उत्पन्न कर सकें।'' (*भागवत* १.२.८)। यदि किसी को भगवान् विष्णु अथवा वासुदेव को तुष्ट करने में रुचि नहीं है, तो उसके सारे तथाकथित पुण्यकर्म व्यर्थ हैं। *मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः*—मोहग्रस्त होने के कारण वह अपनी आशाओं, अपने कार्यों तथा अपने ज्ञान में संभ्रान्त रहता है। इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टिप्पणी है—*नपुंसकम् अनपुंसकेनेत्यादिनैकत्वम्।* पुंसत्वमय तथा नपुंसक की बराबरी नहीं की जा सकती। आधुनिक मायावादियों में यह कहने का फैशन बन चुका है कि मनुष्य जो कुछ करता है या जिस किसी मार्ग का अनुसरण करता है, वह सब सही है। किन्तु ये मूर्खतापूर्ण कथन हैं। यहाँ पर इस वाद की बलपूर्वक पुष्टि की गई है कि जीवन में सफलता की यही एकमात्र विधि है। *ईश्वर-तर्पणम् विना सर्वमेव विफलम्।* जब तक भगवान् विष्णु प्रसन्न नहीं होते तब तक मनुष्य के सारे पुण्यकर्म, अनुष्ठान तथा यज्ञ

मात्र दिखावा हैं और उनका कोई मूल्य नहीं होता। दुर्भाग्यवश मूर्ख लोग सफलता के रहस्य को नहीं जानते। *न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्।* वे यह नहीं जानते कि असली स्वार्थ की परिणति भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने में है।

तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धयाचर ।
भगवान्परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतएव; एतत्—यह; व्रतम्—व्रत का पालन; भद्रे—प्रिय भद्र स्त्री; प्रयता—विधि-विधानों का पालन करके; श्रद्धया—श्रद्धा सहित; आचर—सम्पन्न करो; भगवान्—भगवान्; परितुष्टः—अत्यन्त प्रसन्न होकर; ते—तुमको; वरान्—वर, आशीर्वाद; आशु—शीघ्र; विधास्यति—प्रदान करेंगे।

अतएव हे भद्रे! तुम विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन करते हुए इस अनुष्ठानिक व्रत को सम्पन्न करो। इस विधि से परम पुरुष तुम पर शीघ्र ही प्रसन्न होंगे और तुम्हारी सारी इच्छाओं को पूरा करेंगे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत ''पयोव्रत पूजा विधि का पालन करना'' नामक सोलहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।